धरती तो बचे

अगर दुनिया में हरियाली, जानवर, पक्षी, कीट-पतंगे आदि कम होते जायें, पानी, हवा और जमीन में जहर घुलता जाये तथा ध्रुवों की बर्फ पिघलकर समुद्र का स्तर बढ़ाती रहे, तो मनुष्य का अस्तित्व कब तक बचा रह सकता है? आज यह सबसे बड़ा सवाल है. वैज्ञानिक और पर्यावरण कार्यकर्ता वर्षों से इस संकट से आगाह करते आ रहे हैं, पर हम बेपरवाह हैं. यह जरूर है कि दशकों से राजनेता, प्रशासक और उद्योगपति सम्मेलनों में जलवायु संकट गंभीर होने, वैश्विक तापमान बढ़ने, जंगलों के कटने, जानवरों के विलुप्त होने तथा जानलेवा प्रदूषण पर चर्चा करते रहे हैं. समझौते भी होते रहे हैं, परंतु इन कोशिशों के नतीजे निराशाजनक रहे हैं. अगर हम भारत के हालात पर नजर डालें, तो आज हम भयावह जल संकट का सामना कर रहे हैं. दुनिया के सबसे प्रदूषित और गर्म शहर हमारे देश में हैं. सबसे प्रदूषित नदियां हमारे देश में बहती हैं. सूखे और बाढ़ जैसी आपदाओं की बारंबारता सबसे अधिक हमारे यहां है. शहरीकरण और अंधाधुंध विकास की दौड़ में हमने अपने जंगलों को रौंदा, तालाब पाटे और नदियों को नालों में बदल दिया. विभिन्न स्वास्थ्य कारणों से होनेवाली मौतों का हिसाब देखें, तो भारत में वायु प्रदूषण तीसरा सबसे बड़ा कारण है. लाखों लोगों की सालाना मौत और बीमारियों से त्रस्त शहरी आबादी के बावजूद वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए कोई ठोस नीतिगत पहल नहीं की जा सकी है. स्वच्छ ऊर्जा में अपेक्षित गति से प्रगति नहीं है और कार्बन उत्सर्जन में लगातार बढ़ोतरी हो रही है. खराब पानी पीने से करोड़ों लोग हर साल बीमार पड़ते हैं और लाखों बच्चों की मौत हो जाती है. प्रदूषित हवा और पानी से पैदा होनेवाली ये समस्याएं स्वास्थ्य सेवा तथा उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं. शहरों में गंदे जल के शोधन की समुचित व्यवस्था नहीं होने से नालियां नदियों को बर्बाद कर चुकी हैं. यही पानी खेतों में और पीने के काम में लाया जाता है. इस वजह से खतरनाक रसायन सीधे शरीर में जाने के साथ खाने-पीने की चीजों में मिल जाते हैं. जंगलों के लोप से बाढ़ जैसी आपदाएं तो बढ़ती ही हैं, पारिस्थितिकी भी असंतुलित होती है. देश के विभिन्न हिस्सों में मानव और जंगली जीवों के बीच टकराव की घटनाएं बहुत तेजी से बढ़ रही हैं. इसमें कोई दो राय नहीं है कि अर्थव्यवस्था और समृद्धि के लिए विकास की गति को बरकरार रखना जरूरी है, लेकिन पर्यावरण के संरक्षण से हम आर्थिक बचत भी कर सकते हैं. ऐसे अनेक अध्ययन हैं, जो बताते हैं कि प्रदूषण की रोकथाम पर निवेश करना समझदारी है क्योंकि इससे बीमारी और मौतों को रोका जा सकता है तथा स्वास्थ्य खर्च में बचत की जा सकती है. राष्ट्रीय नीति तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से पर्यावरण के संकट के समाधान के प्रयास आपात स्तर पर किये जाने चाहिए. इस प्रयास में सरकारों के साथ उद्योग जगत, मीडिया और नागरिकों की समुचित भागीदारी जरूरी है.

प्रदूषण की रोकथाम पर निवेश करना समझदारी है, क्योंकि इससे बीमारी और मौतों को रोका जा सकता है तथा स्वास्थ्य खर्च में बचत की जा सकती है.

पर्यावरण है जीने का अधिकार

गोपाल कृष्ण
पर्यावरणविद्
krishna1715@gmail.com

भारत में पर्यावरण के लिए सबसे बड़ी चुनौती नीतिगत स्तर पर है. पर्यावरण को अगर नुकसान करना बंद कर दिया जाये, तो वह खुद ही सुधरना शुरू कर देता है. एक तरफ तो उसके नुकसान की प्रक्रिया जारी रहती है और साथ ही उसे बचाने की बात होती है. पर्यावरण को नुकसान पहुंचानेवाली नीतियों और परियोजनाओं पर रोक लगायी जाए. उसके बाद ही बचाने के बारे में सोचा जाए. नदी प्रदूषण रोकने के लिए सबसे पहला कदम उन फैक्ट्रियों पर रोक लगाना है, जिनका कचरा नदियों में जाता है.

अर्थशास्त्र, कानून व दर्शन में प्रदूषण और कचरे का प्रकृतिकरण कर दिया गया है. जैसे पेड़ पर फूल और फल लगते हैं, वैसे ही प्रदूषण होगा ही, इसे मान लिया गया है. ऐसे में समाधान कहां से निकलेगा. यह मानना जरूरी है कि प्रदूषण और कचरा पैदा होना अप्राकृतिक है. प्रदूषण के कारण 10 लाख ज्ञात कीड़े-मकोड़ों की प्रजातियां में से 45 प्रतिशत प्रजातियां विलुप्त हो गयीं. कीड़े-मकोड़ों के कारण ही खाद्यान्न का उत्पादन होता है. खाद्य उत्पादन में कीड़े-मकोड़ों की, पक्षियों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है. देश-दुनिया की तमाम संस्थाएं पर्यावरण के कारण विलुप्त होनेवाले कीड़े-मकोड़ों पर चकित होती हैं. जब हमने सिस्टम ही ऐसा बना लिया है कि प्रदूषण का उत्पन्न होना तय है और उसके दुष्प्रभाव से कीड़े-मकोड़ों की प्रजातियां विलुप्त होना भी तय है, क्योंकि हम प्रदूषण पर रोक लगाने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठा रहे हैं.

इस समस्या की जड़ में विज्ञानवाद है. इससे न सिर्फ विज्ञान बल्कि प्रकृति, पर्यावरण और मानवता के लिए खतरा भी पैदा हो गया है. विज्ञानवाद से मेरा मतलब है कि जो भी संस्थाएं विज्ञान का चोला ओढ़ कर बात करती हैं, उन्हें हम वैज्ञानिक मान लेते हैं. सरकार की वैज्ञानिक संस्थाएं कहती हैं कि नदियों से बह कर समुद्र में जानेवाला पानी बर्बाद हो जाता है, इसलिए नदियों को जोड़ दिया जाए, तो यह अवैज्ञानिक है. नदियों से जो पानी बह कर समुद्र में जाता है, वह बर्बाद नहीं होता, क्योंकि वह जलचक्र का हिस्सा है. वह पानी बादल के जरिये वापस आ जाता है. एक तमिल कहावत है, 'समुद्र का जल पहाड़ों में होता है.' इसमें सदियों पुराना वैज्ञानिक ज्ञान मौजूद है. हमारा लोक विज्ञान ज्यादा तर्क संगत और वैज्ञानिक है.

जलवायु परिवर्तन एक वैज्ञानिक सत्य है और हर एक देश इससे अलग-अलग तरीके से नहीं निबट सकता. इसके लिए समग्र सोच की जरूरत है. पर्यावरणवाद कभी भी राष्ट्र की सीमाओं में नहीं बंध सकता. अगर किसी देश में पर्यावरण का नुकसान हो रहा है, तो इसको दूसरे देशों को भी भुगतना होगा. जैसे अफगानिस्तान में पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाले कुछ रासायनिक हथियार इस्तेमाल किये जाते हैं, तो उसका दुष्प्रभाव पंजाब ओर उसके आसपास के इलाकों में भी देखने को मिलेगा. पेरिस जलवायु परिवर्तन समझौता बाध्यकारी कानून नहीं है, जो पर्यावरण के हित में नहीं माना जा सकता, लेकिन यह 2020 के बाद की बात है. इससे पहले जो जलवायु समझौता हुआ था, वह क्योटो प्रोटोकॉल का दूसरा चरण है, वह 2012 से 2020 तक है. यह 2020 तक पूरे विश्व के लिए एकमात्र जलवायु कानून है. मीडिया और सरकार 2020 के बाद के कानून यानी पेरिस समझौता के बारे में तो बात करते हैं, लेकिन क्योटो प्रोटोकॉल के बारे में बात करना बंद कर दिया है, जो एक बाध्यकारी कानून है. जब हम बाध्यकारी कानून को लेकर ही गंभीर नहीं हैं, तो जो बाध्यकारी नहीं है, उसके प्रति कितने गंभीर होंगे. यह एक बड़ा सवाल है.

पर्यावरण में यह अवधारणा है कि हमने पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों को अपने पूर्वजों से प्राप्त नहीं किया है, अपितु आनेवाली पीढ़ियों से उधार लिया है. हमें उन्हें वापस लौटाना है.

पर्यावरण के दुष्प्रभाव से हमारी आनेवाली और मौजूदा पीढ़ी दोनों ही शुद्ध जल, शुद्ध मां का दूध और शुद्ध फल से वंचित रह जायेंगी. हमें आनेवाली पीढ़ियों के लिए इसे संजोना होगा. पर्यावरण में यह अवधारणा है कि हमने पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों को अपने पूर्वजों से प्राप्त नहीं किया है, अपितु आनेवाली पीढ़ियों से उधार लिया है. हमें उन्हें वापस लौटाना है, लेकिन पर्यावरण के नुकसान को प्राकृतिक बना कर, आनेवाली पीढ़ियों के हितों की अनदेखी की जा रही है. यह आनेवाली पीढ़ियों के साथ अन्याय है. एक और समस्या है अमीर देशों से गरीब देशों में, शहर के अमीर इलाके से शहर के गरीब इलाके में और अमीर शहर से गरीब शहर की तरफ कचरा भेजा जाना. इससे गरीबों के स्वास्थ्य का नुकसान हो रहा है. एक आम समझ है कि प्रदूषण उत्पन्न करनेवाले तत्व को अगर स्थानांतरित कर दिया जाए, तो वह गैर प्रदूषणकारी हो जाती है. इस क्रिया में आप गैर-बराबरी को बढ़ाते हैं. जो गरीब है, वह पर्यावरण जनित बीमारियों का शिकार होकर पहले से भी ज्यादा गरीब हो जायेगा. तो पर्यावरण के नुकसान से गैर-बराबरी बढ़ती है. जानना जरूरी है कि 194 दिनों तक उपवास करने के बाद ब्रह्मचारी आत्मबोधानंद जब गंगा का सवाल उठाते हैं, तो असल में वे सभी नदियों और पूरी प्रकृति का सवाल उठाते हैं, लेकिन जो हर स्तर पर उदासीनता है, वह ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण है. जब नदी अपने वास्तविक स्वरूप में बहती रहती है, तो वह भूमि का निर्माण भी करती है. नदियों के बहाव को रोक कर भूमि के निर्माण को रोक दिया गया है. इससे कृषि योग्य भूमि घटती जा रही है. इन सभी नीतिगत हस्तक्षेपों से प्रकृति के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया गया है. यह एक सभ्यतागत संकट को जन्म दे रहा है.

प्रदूषण को लेकर जवाबदेही तय की जानी चाहिए. प्रदूषित जल की जांच करने से पता चल जाता है कि कौन-कौन से प्रदूषित तत्व मौजूद हैं और यदि वैज्ञानिक तौर पर यह संभव हो, तो यह पता लगाया जाना चाहिए कि इन प्रदूषक तत्वों का स्रोत क्या है? खून की जांच से भी पता लगाया जा सकता है कि उसमें कौन-कौन से हैवी मेटल मौजूद हैं और उनका स्रोत क्या है? यहां सवाल उठाना जाना चाहिए कि आखिर किसकी अनुमति से हमारी नसों, धमनियों, फेफड़ों को प्रदूषित किया जा रहा है? आखिर वे कौन-सी कंपनियां हैं और किन सरकारी नीतियों के तहत यह आपराधिक कृत्य किया जा रहा है? इन कृत्यों पर आपराधिक मुकदमा दर्ज कराने की कानूनी और न्यायिक व्यवस्था है, लेकिन उस पर काम नहीं हो रहा है. संविधान हमें जीवन जीने का अधिकार देता है, लेकिन पर्यावरण के नुकसान से हमारे जीवन जीने के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है और इसकी जवाबदेही सरकार की है.

(आरती श्रीवास्तव से बातचीत पर आधारित)

बोधि वृक्ष

प्रकृति प्रेम व दर्शन

बंधुत्व की और समन्वय की इस संस्कृति ने अपनी साधना चलायी सृष्टि के चरणों में नतमस्तक होकर. सृष्टि को भोगवस्तु नहीं, गुरु मान कर, उसे प्रणाम करके भारतीयों ने आध्यात्मिक विकास करने का सोचा. वन में विचरण करते समय जीव-जंतु, पशु-पक्षी सबका परस्परावलंबन और प्रेम संबंध देखा. वृक्षों की परोपकारी जीवनशैली ऋषि-मुनियों को आत्मौपम्य के जीवन-दर्शन तक ले गयी. धरती व आकाश के त्रिविध आयामों में वृक्षों की स्थिति और गति रहती है. सभी दिशाओं को स्पर्श करते हुए, वृक्ष धरातल के समूचे जीवन से सख्य जोड़ते हैं. इनकी प्रसन्नता यही धरती के जीवन का मुख्य आधार. आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, सूर्य-चंद्र, वर्षा इनके देवताओं के वृक्ष भी निश्चित किये जीवन साधकों ने. ये वृक्ष शुद्ध प्राणवायु, निर्मल जल, अन्न, पशुओं के लिए चारा, मानव के लिए वस्त्र-इन सभी जीवनावश्यक चीजों की चिंता वहन करनेवाले संरक्षक प्रहरी ही बने. इन्होंने रोग-निवारण के लिए औषधियों का रूप धारण किया. विश्राम की, छाया की व्यवस्था रखी. इनके बिना धरातल पर जीवन शुष्क, नीरस और कुरूप, विद्रूप हो जाता इसका भान महात्माओं को नित्य रहता आया. साहित्य, स्थापत्य, संगीत, नृत्य, शिल्प इत्यादि कलाओं का विकास एवं संस्कृति-सभ्यता के अंग-उपांग वनों के आश्रय से स्फुरित व वृद्धिगत हो गये. 'आई, हैव नेवर सीन, ए पोएम एज ब्यूटीफुल एज ए ट्री'-'वृक्ष के समान सुंदर अन्य कोई भी कविता मैंने नहीं देखी है.' ऐसा किसी आधुनिक अंग्रेज ने कहा है. यही दर्शन प्राचीन काल से भारत-वर्ष का रहा है. इसी के कारण यहां की संस्कृति वन्य संस्कृति के रूप में ख्याति पा गयी. वैदिक ऋषियों से लेकर रवींद्रनाथ ठाकुर तक के आध्यात्मिक और काव्यात्मक साहित्य के क्षेत्र में वनों का ऋण प्रणामपूर्वक मान्य किया गया. कालिदास-भवभूति जैसों ने अपने नायक-नायिकाओं का सुख-दुख वनों की सहायता से चित्रित किया.

डॉ इंदु टिकेकर

हिंदी विरोध का उफान

मृणाल पांडे
ग्रुप सीनियर एडिटोरियल एडवाइजर, नेशनल हेराल्ड
mrinal.pande@gmail.com

नयी शिक्षा नीति के मसौदे में त्रिभाषा सूत्र के प्रस्ताव की खबर आते ही अहिंदी इलाके से हिंदी विरोध का चिरपरिचित आंदोलन सतह पर आ गया. केंद्र सरकार यह कहती रह गयी कि यह एक प्रस्ताव भर है, जिस पर रायशुमारी कराये बिना अमल नहीं होगा, पर दक्षिण भारत में हिंदी के कई कट्टर विरोधी खिलाफ में उठ खड़े हुए. उनके विरोध में संघ के हिंदी प्रेमियों ने भी मोर्चा खोलने में देर नहीं लगायी. और, देखते-देखते भाषा की ओट में राजनीति का खेल शुरू हो गया. ऐसे अवसरवादी आंदोलन आज देश में खीझ अधिक पैदा करते हैं, समर्थन-भाव कम. नयी सरकार बनते ही इस प्रस्ताव के प्रारूप को लाने की इतनी क्या हड़बड़ी थी?

भाषावार सूबों और भारत की राष्ट्रभाषा के मुद्दों पर 1950 के दशक से ही हो-हल्ला मचता आया है. आंध्र प्रदेश के गठन, गुजरात और महाराष्ट्र के विभाजन, पंजाब का भाषा आधारित बंटवारा जैसे मामले इसी तरह की राजनीति के परिणाम हैं. सच कहें, तो बुझते राजनेताओं की दूकानें भले ही इनसे चल निकलती हों, भारत के इन भाषायी आंदोलनों का भाषाओं या साहित्य से वैसा ही रिश्ता है, जैसा आज के हास्य कवि सम्मेलनों का हास्य या कविता से. राजनीति के कारण ही पंजाब में मूलतः गुरुद्वारों और धर्मग्रंथों की भाषा रही गुरुमुखी का राजनीति में रुतबा बढ़ा और जनसंघ के असर से हिंदी अखबारों का, पर इनसे न तो पंजाबी लेखकों का भला हुआ और न ही हिंदी का. शीर्ष पर अंग्रेजी ही राजकाज हांकती रही और साहित्य में खुशवंत सिंह और बड़े बाबूलोग हिंदी की खिल्ली उड़ाते रहे. सच तो यह था कि पंजाब में भाषायी झगड़े अधिकतर उर्दू में ही चलते थे, क्योंकि अधिकतर पंजाबी राजनेता तो उर्दू ही बोलते-पढ़ते थे.

गांधी जी होते, तो हिंदी को जबरन नहीं लादते. लिहाजा हमारी राय में ताजा सरकारी त्रिभाषा प्रस्ताव और गांधी, तुलसी, जायसी या रामचंद्र शुक्ल की भाषा दृष्ट तेल और पानी की तरह अलग-अलग हैं.

जब भाषावार प्रांतों का गठन मंजूर किया गया, तो उम्मीद थी कि जनता की भाषा में जनता का शासन कायम होगा. पर ऐसा नहीं हुआ. नेता तर्क दे सकते हैं कि वे तो मातृभाषा की जोत जगा कर आम जनता की भाषा में रुचि जगा रहे थे, जैसा तर्क अब कुमार विश्वास सरीखे अर्ध-राजनेता दे रहे हैं, पर आप ही कहिए, हिंदी के इतिहास में जायसी, प्रेमचंद, महादेवी या हजारी प्रसाद जी का नाम अमर हो, इसके लिए हर पाठ्यक्रम में निःशंक या बालकवि बैरागी की कविताओं को शामिल कराना कितना जरूरी है? जब अनुभव के इतने कड़वे पाठ हम सब पढ़ चुके हों, तो क्या यह साफ नहीं हो जाना चाहिए कि बार-बार हिंदी को इधर-उधर से लाकर जबरन मान्य राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव बचकाना है?

आवश्यकता के अनुरूप देशभर के युवा नेटिजंस ने अपने काम लायक नेट की अंग्रेजी ताबड़-तोड़ सीख ली. कुछ फितूरी बच्चे रोचक व पठनीय हिंदी लिखने लगे. तब यह नयी शिक्षा नीति किस कद्दू में तीर मारने के लिए उत्तर के धनुर्धारियों को बंगाल या चेन्नई बुला रही है?

अंततः हर बड़ा लेखक और नेता अपने युग की उपज होता है और अपने युग के मुहावरों में ही जन-संवाद कर सफल बनता है. दक्षिण अफ्रीका से आकर अहिंदीभाषी गांधी जी ने 1920 में जाना कि बोलचाल की हिंदी, जिसे वे हिंदुस्तानी कहते थे, ही उस समय के आमजन की भाषा थी. उसके मार्फत ही 'स्वराज' नामक नये विचार को जन-जन तक पहुंचाने के लिए उन्होंने गुजराती मासिक 'नवजीवन अणि संदेश' को हिंदी साप्ताहिक 'नवजीवन' के बतौर ढाला. आज वे होते, तो हिंदी को जबरन नहीं लादते. लिहाजा हमारी राय में ताजा सरकारी त्रिभाषा प्रस्ताव और गांधी, तुलसी, जायसी या रामचंद्र शुक्ल की भाषा दृष्टि, तेल और पानी की तरह अलग-अलग हैं.

अहिंदीभाषी राज्यों का हिंदी विरोध एक सामूहिक पूर्वाग्रह, एक लंबी परंपरा की उपज नाम है, जो आजादी के तुरंत बाद मनुवाद विरोध से जुड़ी है. वहां की बहुसंख्य जनता वाल्मीकि से इतर रामायणों को अलग तरह से पढ़ती, राजा बलि को पूजती और उनको पाताल भेजनेवालों को शत्रु मानती आयी है. हम कैसे कहें कि अतीत की परछाइयों का हम पर कोई असर नहीं होता? उत्तर से जो भीतरी हमले (आर्यों, मुगलों, मराठों के) दक्षिण ने झेले हैं, या ब्राह्मणनीत सनातनी धार्मिक संस्थाओं ने जिस तरह वहां सदियों तक दलितों व महिलाओं का शोषण किया है, उसके इतिहास से उनको राष्ट्रवाद का चीरा लगा कर कैसे अलग किया जा सकता है?

सत्तर सालों में उत्तर के विपरीत दक्षिण ने ईमानदारी से परिवार नियोजन और शिक्षा को बढ़ावा देकर अपनी जन्म दर कम की है तथा कई मामलों में शानदार विकास किया है. फिर भी जनबहुल और अराजकता से भरे उत्तर के वोटों की बहुलता ने बार-बार राजनीति को उत्तरमुखी शक्ल और नेता दिये. इसकी भी कुछ कसक तो है ही.

संभव है कि भाजपाई दस्ते गैर-हिंदी क्षेत्र में सड़कों पर नारे लगाने लगें. तब क्या यह असंभव रह जायेगा कि तमिल या कन्नडीगा लोग अलगाववादी बनने लगें? आखिर पाकिस्तान तो इसी तरह बना था. और, बाद में पाकिस्तान के बंटने का कारण बंगाली और उर्दू-भाषियों के बीच कड़वाहट का हद से बढ़ जाना ही था. अब कमजोर अर्थव्यवस्था के दौर में विभिन्न पार्टियों की हवा निकालने के बाद भाजपा गैर-हिंदी क्षेत्रीय दलों से हिंदी के मुद्दे पर दो-चार करने का इरादा रखती है, उसकी यह नादानी उसको ही मुबारक हो.

आपके पत्र

हेड लाइट का हमेशा जलना परेशानी का सबब

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिबंधित किये जाने के बाद मोटर कंपनियों द्वारा बीएस-4 तकनीक वाले दोपहिया वाहनों को बाजार में उतारा गया, परंतु इन वाहनों की हेड लाइट का दिन में भी जलना समझ से परे है. आखिर इससे सड़क दुर्घटना में कमी किस प्रकार आ सकती है? सच तो यह है कि दिन के वक्त सामने से आते वाहन की हेड लाइट की रोशनी से दुर्घटना की आशंका ही बढ़ती है. जहां तक कुहासे की बात है, तो बमुश्किल दो महीने की सावधानी के लिए शेष 10 महीने बेवजह हेड लाइट का जलना तर्कसंगत नहीं लगता. साथ ही केंद्रीय परिवहन मंत्रालय को यह भी सुझाव है कि दोपहिया वाहनों के अलग-अलग गियर सिस्टम को प्रतिबंधित कर सभी कंपनियों को एक तरह के गियर सिस्टम अपनाने को बाध्य किया जाए, क्योंकि गियर सिकनेस के कारण भी दुर्घटनाएं होती हैं.

सुरजीत झा, गोड्डा

फ्री का चंदन, घिस मेरे नंदन !

दिल्ली में आगामी चुनाव को देखते हुए मुख्यमंत्री केजरीवाल सिर्फ वोट बटोरने के लिए महिलाओं को डीटीसी की बसों और मेट्रो में फ्री यात्रा करना चाहते हैं, जिस पर लगभग 700 करोड़ रुपये खर्च होंगे. बिजली फ्री, पानी फ्री और अब बस और मेट्रो सफर भी फ्री, मगर एक बड़ा सवाल है कि फ्री की सुविधाएं कब तक? वैसे तो दिल्ली की बस और मेट्रो सेवा की स्थिति पहले से अच्छी नहीं है. ऊपर से यह मुफ्त का सफर कैसे तर्कसंगत हो सकता है? फ्री सफर की सुविधा से तो इन बसों और मेट्रो में महिलाओं की भीड़ बढ़ेगी और इससे दैनिक यात्रियों की मुश्किलें और भी बढ़ेंगी. जनता को मुफ्त की सुविधा मत दीजिए. उन्हें रोजगार और सही काम से ही स्वावलंबी बनाइए. इस तरह की फ्री की सुविधाओं से लोगों की आदतें बिगड़ती हैं.

वेद मामूरपुर, नरेला

चुनाव परिणाम के मायने

लोकसभा चनावों में भाजपा व एनडीए को मिली प्रचंड बहुमत के लिए प्रधानमंत्री बधाई के पात्र हैं. उनके खिलाफ सभी विपक्षी दल किसी न किसी गठबंधन से जुट कर चुनाव लड़ रहे थे. ऐसे में इस परिणाम के बाद सभी विपक्षी दलों के लिए अब समय आ गया है कि वे अपनी विचारधारा और अपनी कार्यप्रणाली की पुनः समीक्षा करें. अगर वे ऐसा नहीं करते हैं, तो वे सब और भी कमजोर होते जायेंगे, क्योंकि देश की जनता अब समझदार हो चुकी है. अब जाति, धर्म, संप्रदाय, क्षेत्रवाद, लालच आदि चीजों से ऊपर उठ कर विकास और राष्ट्रवाद के नाम पर लोगों ने वोट देना शुरू कर दिया है. दूसरी ओर, अब भी देश में मतदान की दर 70% तक भी नहीं पहुंच पायी है. मतलब यह कि 30 करोड़ लोग अपने मत का प्रयोग नहीं कर पाये हैं. यह चिंता का बड़ा विषय है. वैसे तो चुनाव आयोग शक्तिशाली नजर आता है, लेकिन एक सफल लोकतंत्र के लिए उसे और मजबूत करने की आवश्यकता है.

भरत सिंह, सिमडेगा

कुछ अलग

शहर जब गांव आता है

मिथिलेश राय
साहित्यकार
mithileshray82@gmail.com

गांव शहर रोज जाता है. उसकी असंख्य जरूरतें हैं. वहां वह जरूरत की चीजें लेता है और शाम ढले लौट आता है. कभी खास जरूरत होती है, तो वहां वह रह भी लेता है. वहां रहते हुए वह असहज फील करने लगता है. जब भी कहीं सड़क को पार करने की नौबत आती है, वह भयभीत हो जाता है. लोगों को सड़क पार करते हुए देखता रहता है. फिर अपने अंदर की बहादुरी और चालाकी के भाव को जागृत करते हुए दौड़ लगा देता है. जब भी वह सड़क को पार कर लेता है, उसे लगता है कि उसकी जान में जान लौट आयी है!

गांव शहर की चीजों को हैरत से निहारते हुए समय गुजरता है. वह कहीं ठिठक कर ऊंची बिल्डिंग को निहारने लगता है. एस्कलेटर पर पांव रखने से पहले उसे निहारता है. अगर शहर में उसे कहीं पेड़ दिख जाता है, तो वह उसे भी देखता रहता है. वह उस पेड़ पर कोई चिड़िया या घोंसले को ढूंढता है. लेकिन, उसे यह सब नहीं मिलता है. वह सोचता है कि शहर में चिड़िया कहां रहती होंगी? अगर शहर में चिड़िया नहीं रहती है तो रोज सवेरे इसकी नींद किस प्यारी आवाज से खुलती होंगी! वह देर रात तक शहर को जगे हुए देखता है. वहां वह पूर्णिमा के पूरे उगे हुए चांद को देखता है और सोचता है कि रात की इतनी भक्क रोशनी में चांद की कितनी रोशनी है इसके पास! लेकिन शहर को गांव की बहुत कम जरूरत होती है. जब उसका मन बहुत उकता जाता है या बहुत जरूरी काम निकल आता है, तभी वह गांव जाता है. गांव में वह देखकर हैरत करता है कि अब भी जंगल का दृश्य उपस्थित कर रहा है. वह आंगन, दरवाजे, सड़कों के किनारे-किनारे, बीच खेत में, खेत के मेड़ पर, तरह-तरह के पेड़-पौधों को देखता है. सवेरे कानों में तरह-तरह की चिड़िया की आवाज जाती है. वह मगन होकर आवाजों को सुनने लगता है. उसके मन में यह विचार आता है कि उन पंछियों को वह देखे. वह बाहर निकलता है और आवाज की तरफ अपनी निगाह करता है. तभी पूरब की ओर से आ रही हवा उसके नथुने से टकराती है और उसका अंतस शीतल हो जाता है. चिड़ियों के मधुर गीत और शुद्ध हवा का स्पर्श, वह विभोर हो जाता है.

उसकी नजर गाछ में पके आम पर जाती है. वह ठिठक जाता है. फल उसके हाथ में आता है और जीभ पर चढ़ता है. आह! अद्भुत स्वाद. वह मेड़ पर चलते हुए जिधर भी निहारता है, उसे फसल अपनी हरियाली के साथ झूमती हुई नजर आती है. वह नदी के किनारे जाता है और दूब पर बैठ कर पानी का बहते जाना निहारता है. शाम ढले पीपल और बरगद के वृक्षों के पास वह ढोलक बजते देखता है तो खुद को रोक नहीं पाता है और वहां जाकर बैठ जाता है. वह भीड़ को ताली से ताल मिलाते हुए देखता है और खुद भी झूमते हुए ऐसा करने में मगन हो जाता है. वह चांद की पूरी रोशनी को जमीन पर उतरते देखता है और आनंदित होते रहता है.

देश दुनिया से

थियानमेन वर्षगांठ पर बीजिंग में पसरा सन्नाटा

छात्र प्रदर्शनकारियों पर थियानमेन चौक पर की गयी हिंसक कार्रवाई की 30वीं बरसी पर बीजिंग की सड़कों पर सन्नाटा पसरा रहा. चीन के राजनीतिक इतिहास में दर्ज इस खौफनाक घटनाक्रम पर होनेवाली चर्चाओं को चीन ने दबाने की भरपूर कोशिश की. लोकतांत्रिक सुधारों की मांग के लिए देशभर में चल रहे प्रदर्शनों पर नियंत्रण के लिए बीजिंग ने सेना और टैंक को उतार दिया था. चीन द्वारा 4 जून, 1989 को की गयी इस खौफनाक कार्रवाई में लगभग 3000 नागरिकों की मौत हो गयी थी. बीते मंगलवार को थियानमेन चौक और आसपास के क्षेत्रों में भारी पुलिस बल तैनात कर दिया गया और पर्यटकों की आवाजाही पर निगरानी बढ़ा दी गयी. इस दौरान थियानमेन चौक पर विदेशी पत्रकारों को जाने और फोटोग्राफरों को फोटो लेने से रोक दिया गया. थियानमेन चौक कार्रवाई पर अब तक चीन द्वारा कोई विवरण जारी नहीं किया गया है और न ही इतिहास में इसे तवज्जो दी गयी है. बीते मंगलवार को चीन की आधिकारिक मीडिया द्वारा इस बरसी का कोई जिक्र नहीं किया गया. वर्ष 1989 में थियानमेन कार्रवाई के प्रत्यक्षदर्शियों का मानना है कि इस घटना के बाद चीन में व्यापक बदलाव और अधिनायकवाद का दौर शुरू हुआ.

The Guardian

कार्टून कोना

साभार : कार्टून मूवमेंट

पोस्ट करें : प्रभात खबर, 15 पी, इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची 834001, **फैक्स करें** : 0651-2544006,
मेल करें : eletter@prabhatkhabar.in पर ई-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हो. लिपि रोमन भी हो सकती है